Airo International Research Journal
Volume XIV, ISSN: 2320-3714
February, 2018
Impact Factor 0.75 to 3.19
UGC Approval Number 63012

वेदकालीन जीवन के आर्थिक सोपान

डॉ॰ जगतनारायण
माँ दुर्गानगर, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

सारांश

वेद शब्द संस्कृत भाषा की विद् धातु से निष्पन्न हुआ है । जिसका अर्थ आचार्य पाणिनि ने विद् विचारणे विद् सत्तायाम् विद् लृ लाभे किया गया है । अर्थात् वेद शब्द का अर्थ हुआ ज्ञानपूर्वक विचार करके सत्ता का लाभ ग्रहण करना । विद्वानों ने ऋग्वेद को मानव-ग्रन्थालय का प्राचीनतम ग्रन्थ माना है । इसमें जितने ही प्रयोगों द्वारा अनेकत्व में एकत्व के दर्शन होते हैं । उस समय में समाज में वेदकालीन समाज व्यवस्था का पूरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । जिसके कारण कुटुम्ब के सभी सदस्यों को धन प्रेम और सहायता की कभी भी कमी नहीं रहती थी । उसे परिवारिय भरण-पोषण के परिप्रेक्ष्य में दूसरों के सामने हाथ नहीं फैलाना पड़ता था । आज के युग में संयुक्त परिवार के सभी सदस्य एक ही घर में रहें, एक ही भोजनालय में सबकी व्यवस्था हो, सबका आराध्य देव एक ही हो, सबकी एक ही पूजन विधि हो, एक ही व्यक्ति घर का प्रमुख हो तो फिर उसे घर नहीं स्वर्ग कहा जायेगा ।

वेद समस्त ज्ञान-विज्ञान का भण्डार है । महर्षि कणाद् ने वेद के विषय में अपनी सहमति देते हुए कहते हैं कि वे कोई साधारण ग्रन्थ नहीं है । वेदों के प्रत्येक पद की रचना बुद्धि युक्त है ।

वेद शब्द संस्कृत भाषा की विद् धातु से निष्पन्न हुआ है । जिसका अर्थ आचार्य पाणिनि ने विद् विचारणे विद् सत्तायाम् विद् लृ लाभे किया गया है । अर्थात् वेद शब्द का अर्थ हुआ ज्ञानपूर्वक विचार करके सत्ता का लाभ ग्रहण करना । विद्वानों ने ऋग्वेद को मानव-ग्रन्थालय का प्राचीनतम ग्रन्थ माना है । इसमें जितने ही प्रयोगों द्वारा अनेकत्व में एकत्व के दर्शन होते हैं । उस समय में समाज में वेदकालीन समाज व्यवस्था का पूरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । जिसके कारण कुटुम्ब के सभी सदस्यों को धन प्रेम और सहायता की कभी भी कमी नहीं रहती थी । उसे परिवारिय भरण-पोषण के परिप्रेक्ष्य में दूसरों के सामने हाथ नहीं फैलाना पड़ता था । आज के युग में संयुक्त परिवार के सभी सदस्य एक ही घर में रहें, एक ही भोजनालय में सबकी व्यवस्था हो, सबका आराध्य देव एक ही हो, सबकी एक ही पूजन विधि हो, एक ही व्यक्ति घर का प्रमुख हो तो फिर उसे घर नहीं स्वर्ग कहा जायेगा ।

मानव-जीवन का आधार अन्न है । अन्नों की प्राप्ति कृषि से होती है । कृषि के लिए भूमि और पर्यन्य की आवश्यकता होती है । अतएव अथर्ववेद में भूमि और पर्जन्य को नमस्कार किया गया है ।[1] कृषि-कार्य गौरव का कार्य माना जाता था, अतएव इन्द्र और पूषा देवों को कृषि कार्य में लगाया गया ।[2] ऋग्वेद में कहा गया है कि द्यूत आदि दुर्गणों को छोड़कर सुख के लिए कृषि करो ।[3] यजुर्वेद में राजा के चार प्रमुख कर्तव्य बताए गए हैं - कृषि की उन्नति, जन-कल्याण, राष्ट्र की श्रीवृद्धि, राष्ट्र को पुष्ट बनाना ।[4] इसमें कृषि को सबसे अधिक प्रमुखता दी गई है।

शतपथब्राह्मण में पूरे कृषि-कर्म को चार शब्दों में वर्णन किया गया है - कर्षण-खेत की जुताई करना । वपन-बीज बोना । लनव-पके खेत की जुताई करना । मर्दन-मड़ाई करके स्वच्छ अन्न प्राप्त करना ।[5]

ऋग्वेद और अथर्ववेद में राजा वेन के पुत्र राजा पृथी (पृथु) को कृषि-विद्या का आविष्कारक बताया गया है। उसने कृषि विद्या के द्वारा अनेक प्रकार के अन्न उत्पन्न किए ।[6] इस बात का समर्थन महाभारत शान्तिपर्व और भागवतपुराण में किया गया है ।[7] ऋग्, यजु और वेदों में कृषि-कर्म से सम्बद्ध अनेक प्रकार के सूक्त हैं ।[8] इनमें कृषि-सम्बन्धी मुख्य बातें ये दी गई हैं - बीज बोने से पहले खेत को ठीक ढंग से स्वच्छ करें । कृषि-हेतु बैल, हल आदि उत्तम हों । उत्तम कोटि के बीज बोए जाएं । अनुकूल ऋतु में बीज बोवें । यथासमय सिंचाई-निराई करें ।

खेती तैयार होने पर कटाई-मड़ाई करें ।[9] अथर्ववेद, यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में भूमि के कई भेदों का उल्लेख है।[10] तीन मुख्य भेद हैं - उर्वरा, इरिण, शष्पय । यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता और अथर्ववेद में मिट्टी के कतिपय भेदों का उल्लेख है ।[11] ये है मृद, मृत्तिका, रजस् भूमि, अश्मा, अश्मन्वती, किंशिल, इरिण्य, उर्वर्य, सिकता, सिकत्य ।

कृषि के दो भेद का उल्लेख है ।[12] ये हैं - 1. वर्ष्य -वर्षा पर निर्भर रहने वाली कृषि । 2. अवर्ष्य - वर्ष पर निर्भर ना रहने वाली, अर्थात् कूप,तालाब, नहर आदि सिंचाई के अन्य साधनों पर निर्भर । कृषि के अन्य दो भेदों का भी उल्लेख मिलता है ।ये हैं - 1. कृष्टपच्य - जुते खेत में कृषि द्वारा उत्पन्न अन्न । 2.अकृष्टपच्य- बिना जुती भूमि में उत्पन्न अन्न । जैसे - जंगली धान, फल-फूल ।[13]

वेदों में सिंचाई के इन साधनों का उल्लेख मिलता हैं- 1. वर्षा, 2.कुल्या, नहरों से सिंचाई, 3. नदियों से, 4. तालाबों आदि से, 5. कुएँ आदि के जल से । तैत्तिरीय संहिता में दो फसलों का उल्लेख[14] है इन्हें शारदीय और वासन्ती कहते हैं । तैत्तिरीय संहिता में ही अन्य चार फसलों का कटने की ऋतु के नाम से उल्लेख किया है ।[15] ये हैं - ग्रीष्म वर्षा, शरद्, हेमन्त-शिशिर में कटने वाली फसलें । इनके अन्नों का नाम भी क्रमशः निर्देश है- जौ, औषधियाँ, चावल तथा माष-तिल ।

यजुव्रेद और तैत्तिरीय संहिता में 12 अन्नों के नाम दिए हैं ।[16] ये हैं - 1. व्रीहि (धान), 2. यव (जौ), 3. माष (उड़द), 4. तिल, 5. मुद्ग (मूंग), 6. खल्व (चना), 7. प्रियंगु (कंगुनी), 8. अणु (पतला चावल), 9. श्यामक (सावाँ), 10. नीवार (कोदों, तिन्नी धान), 11. गोधूम (गेहूँ), 12. मसूर ।

उर्वरक के लिए ऋग्वेद में 'क्षेत्रसाधस्' शब्द है ।[17] वेदों में खाद के लिए यह शब्द है - करीष, शकन्, शकृत् ।[18] यह खाद गाय, बैल, भैंस आदि की होती थी । वेदों में खाद के लिए गोमय शब्द का उल्लेख नहीं हें।

कृषि नाशक तत्त्वों को कृमि कहते हैं । अथर्ववेद में कृषिनाशक इन तत्त्वों का उल्लेख है -

1. अतिवृष्टि और अनावृष्टि :

विद्युत और सूर्य की कड़ी धूप कृषि को नष्ट ना करें ।[19] अतिवृष्टि में बिजली अनावृष्टि में तीव्र धूप का होना ।

2. तीव्र धूप और हिमपात :

ये दोनों कृषि को नष्ट करें ।[20]

3. आखु (चूहा) :

कृषिनाशकों में चूहे का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है और इसे मारने का निर्देश है ।[21]

4. दर्त, जभ्य और उपक्वस :

ये भी कृषि नाशक हैं ।[22] तर्द, पतंग, जभ्य और उपक्वस कृषि को नष्ट करने वाले की पतंग है । छान्दोग्य उपनिषद् में टिड्डी के लिए 'मटची' शब्द आया है । एक बार पूरे कुरु जनपद की खेती टिड्डीयां खा गई थी ।[23]

अथर्ववेद में गोशाला के विषय में मुख्य रूप से ये बातें कही गई है[24] - गाय आदि के बैठने के लिए पर्याप्त स्थान हो । अन्न-जल की ठीक व्यवस्था हो । पशुओं के पालन-पोषण की पूर्ण व्यवस्था हो, जिसमें उनकी वृद्धि हो ।

अथर्ववेद के अन्य कुछ मंत्रों में पशु-संवर्धन से संबद्ध में कहा है[25] - पशुओं के लि चारे की सुन्दर व्यवस्था हो, जिससे वे हृष्ट-पुष्ट रहें । वे घास खावें, शुद्ध जल पीवें, घुमने के लिए बाहर जावें । गायों के सुन्दर बछड़े हों । फौज में शुद्ध जल पीवें । उन्हें चारों का भय ना हो । पशुओं को शुद्ध वायु मिले । सूर्य का प्रकाश उन्हें शक्ति दे । पशु इक्ट्ठे होकर रहें घूमे । पशु संरक्षण के द्वारा दूध और घी प्राप्त हो । पशुधन की वृद्धि हो। जहां गाय आदि पशुओं का संरक्षण होता है, वहां धान्य और श्री की वृद्धि होती है ।

वेदों में गाय का बहुत महत्त्व बताया गया है । गाय को विराट् ब्रह्म का रूप माना गया है । उसमें सभी देवों का निवास है ।[26] 'गावो भगः' गाय सौभाग्य का चिह्न है । गाय इन्द्र की प्रतिनिधि है । गाय सोम की पहली

Airo International Research Journal
Volume XIV, ISSN: 2320-3714
February, 2018
Impact Factor 0.75 to 3.19
UGC Approval Number 63012

घूंट है ।[27] गाय अन्य मंत्र में कहा है कि - गायें आई और हमारा कल्याण हुआ । ये गोशाला में आनन्द से रहें।[28] गायों की प्रशंसा में अथर्व वेद में कहा गया है कि ये कृश को हृष्ट-पुष्ट बनाती हैं । निस्तेज को तेजस्वी बना देती हैं, अत: सभाओं में इनका गुणगान होता है ।[29] गाय में इन गुणों का समावेश बताया गया है- वार्चस्, तेज, भग, यश, पयस् और सरसता ।[30] ऋग्वेद और अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि गायों आदि के कान पर पहचान कुछ अंक लिख दिए जाते थे । ऋग्वेद में वर्णन है कि गायों के दोनों कानों तांबें की शलाका से मिथुन बना दो । इससे गाय की प्रसव की योग्यता और दुग्ध की वृद्धि होती है ।

वेदों में पशु हत्या को दंडनीय अपराध माना गया है । यजुर्वेद ने स्पष्ट कहा है 'अभयं न: पशुभ्या:' पशु निर्भय रहें ।[31] ऋग्वेद में पशु हत्या करने वाले का सामाजिक बहिष्कार करने का निर्देश है ।[32] अथर्ववेद में कहा है कि गया है द्विपाद् और चतुष्पाद् जीवों की हत्या ना करो ।[33] गाय, घोड़े और मनुष्य की हत्या ना करो । निरपराध की हत्या करना दंडनीय अपराध है ।[34] यजुर्वेद में पशुओं का नाम लेते हुए कहा गया है कि गाय, गवय, द्विपाद पशु, एक शफ वाले पशु, चतुष्पाद पशु, ऊँट और भेड़ आदि को ना मारो ।[35] यजुर्वेद में ही घोड़े की हत्या को दंडनीय अपराध बताया गया है ।[36]

वेदों में पशु-संपदा के अनेक लाभों का उल्लेख है ।कुछ लाभ ये है - 1. दूध, दही, मक्खन आदि की प्राप्ति । 2. बैलों आदि का कृषि में उपयोग । 3. भारवाह पशु के रूप में बैल, गर्दभ, ऊँट, खच्चर आदि का उपयोग । 4. घोड़े के द्वारा रथ संचालन और उनका युद्ध में भाग लेना । 5. भेड़ आदि की ऊन से ऊनी वस्त्रों का निर्माण । 6. मृत पशुओं की खाल से चर्म-उद्योग, जूते, दृति (मशक), वर्म (कवच) आदि का निर्माण । 7. पशुओं के गोबर (करीष) का खाद के रूप में उपयोग । 8. हाथी के दाँत का कलाकृतियों में उपयोग । हाथी, घोड़े, ऊँट आदि की सवारी के लिए उपयोग ।

वेदों में लगभग 160 वृत्तियों का उल्लेख है ।[37] इनमें कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण है कुछ साधारण । यहां यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन समय में शिल्प और उद्योग को आदर की दृष्टि से देखा जाता था, अतएव रथकार ओर कर्मार आदि को राजकृत में स्थान दिया गया था । ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि एक ही परिवार के व्यक्ति विभिन्न उद्योग करते थे और प्रेम से रहते थे । मंत्र का कथन है कि कारु हूँ, पिता भिषक् है और माता चक्की पीसती है। घर की आय के लिए विभिन्न काम करते है।

नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिम ।[38]

अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में कारु लोगों की आर्थिक स्थिति उत्तम थी । उन्हें "पुरुदमास:" अर्थात् अनेक भवन या कोठियों वाला कहा गया है ।"[39]

यहां पर कुछ प्रमुख उद्योगों का उल्लेख किया जा रहा है ।

वस्त्र उद्योग: यह उद्योग सुप्रतिष्ठित था ।सूती, ऊनी और रेशमी वस्त्रों का वर्णन है । सूती वस्त्रों को 'वासस्', ऊनी को ऊर्णायु और रेशमी को 'तार्प्य' कहते थे ।[40] जुलाहा या बुनकर को 'वासोवाय' कहते थे ।[41] अथर्व वेद में एक सुन्दर रूपक द्वारा बुनाई का वर्णन है । वर्ष- चक्र एक करघ है, दिन और रात्रि दो स्त्रियाँ है, ये वर्ष रूपी वस्त्र बुनती हैं । ऋतुएँ 6 खूँटियाँ हैं ।

रथकार, तक्षा, तष्टा, त्वष्टा-बढ़ई के लिए इन चारों शब्दोंका प्रयोग मिलता है ।[42]

कर्मार - लौहकार या लोहार को कर्मार कहते थे । ये लोहे और अन्य धातुओं के बर्तन आदि बनाते थे । इनको 'मनीषिण:' (कुशल कारीगर) कहा गया है ।[43]

हिरण्यकार - सुनार ।[44] यह सोना चाँदी आदि धातुओं को गलाकर विविध आभूषण बनाता था ।

आंजनीकारी - आंख के लिए अंजन या सुरमा बनाने वाली ।[45] मधु-निर्माण अच्छा व्यवसाय था । शहद की मक्खी के लिए सरधा शब्द है। उनमें प्राप्त शहद को 'सारध मधु' कहते थे ।[46]

Airo International Research Journal
Volume XIV, ISSN: 2320-3714
February, 2018
Impact Factor 0.75 to 3.19
UGC Approval Number 63012

कृषिकर्म एवं विविध उद्योगों से उत्पन्न सम्मान के क्रय-विक्रय के लिए व्यापार ही एकमात्र साधन है । वेदों में व्यापारियों के लिए वणिक् (वाणिज्) और वाणिज दो शब्द आए है ।[47] अथर्ववेद के आठ मंत्रों का एक पूरा सूत्र वाणिज्य से संबद्ध है ।[48] इस सूत्र में इन्द्र को एक व्यापारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।[49]

वेदों से ज्ञात होता है कि क्रय-विक्रय का आधार अधिकांशत: वस्तु-विनिमय था । कुछ बहुमूल्य चीजों मूल्य से दी जाती थी । यजुर्वेद में व्यापार का आधार आदान-प्रदान बताया गया है । मंत्र का कथन है - तुम मुझे दो में तुझे देता हूँ । तुम मेरे लिए रखो मै तुम्हारे लिए रखता हूँ । तुम विक्रय वस्तु मुझे दो, मै तुम्हें मूल्य देता हूँ ।[50] मंत्र में मूल्य के लिए 'निहार' शब्द है । तैत्तिरीय संहिता और अथर्ववेद में उल्लेख है कि कुछ औषधियाँ, सोम और पवस्त (चादर), दूर्श, अजिन, गाय आदि पशुओं से खरीदी जाती थी ।[51] ऋग्वेद के मंत्र में इन्द्र को दस गायों से खरीदने का उल्लेख है ।[52]

अन्त में यह निर्णय होता है कि बेचते समय जो मूल्य तय हुआ था, वही मान्य है ।[53]

अथर्ववेद में व्यापार में सफलता के कुछ गुर भी दिए है ।[54] ये है : चरितम् - चरित्र एवं व्यवहार में शुद्धि। इसमें विश्वसनीयता आती है । उत्थितम् - उत्थान, अध्यव्यवसाय, उत्साह, दृढ़निश्चय । दृढ़निश्चय और साहस प्रबल है तो सफलता अवश्यंभावी है । एक अन्य मंत्र में उपोह समूह गुणों को समृद्धि का साधन बताया है ।[55] उपोह - समीप लाना अर्थात् दूरस्थ वस्तुओं को क्रय करके अपने यहां लाना । समूह - संग्रह करना, इक्ट्ठा करके रखना ।दूरस्थ वस्तुओं को लाकर बेचना अधिक लाभप्रद होता है ।संग्रह की हुई वस्तुएँ विशेष परिस्थितियों में बहुत लाभ देती है। सूझबूझ और अवसरोचित कार्य करना - वेदों में सुझबूझ को सौ गुणा फल देनेवाली देवी कहा गया है ।[56] अधिक लोभ होय: व्यापार में अधिक लोभी होने से निन्दा का पात्र होता है ।[57] मिलावट करना दंडनीय अपराध : ऋग्वेद और अथर्ववेद में कहा है कि अन्न आदि में मिलावट दंडनीय अपराध हैं । एक व्यापारी ने अच्छे जौ में सौ पड़े जौ (कुयव) मिलाकर बेच दिए । ज्ञात होने पर राजा ने उसे दंड दिया ।[58]

वैदिक काल में समुद्री व्यापार बहुत प्रचलित था । ऋग्वेद, अथर्व वेद[59] और बौधायन धर्मसूत्र[60] में समुद्री व्यापार का उल्लेख है । बड़ी समुद्री नौकाओं में सैकड़ों अरित्र लगाते थे । इन्हें अथाह समुद्र में चलने वाला बताया है, जहां कोई सहारा नहीं था ।[61] यह भी उल्लेख है कि यह पोत तीन दिन ओर तीन रात लगातार चलते रहते थे। इनमें छ: घोड़े वाले तीन रथ थे ।[62] 'षडश्वै:' से ज्ञात होता है कि इनमें छ: अश्वशक्ति वाले तीन इंजन होते थे । 'शतद्भि:' से पानी कातने वाले सौ पहिए अर्ध ज्ञात होता है ।

ऋग्वेद में वरुण की प्रस्तुति में कहा गया है कि वह आकाश में उड़ने वाले पक्षियों का मार्ग जानता है ।[63] आकाश में चलने वाले वायुयानों के लिए ऋग्वेद में 'नौ' और रथशब्दों का प्रयोग है । इन्हें 'अन्तरिक्षप्रुद्' और 'अपोदक' कहा गया है । मंत्र में इन्हें 'आत्मन्वती' कहा गया है इससे सूचित होता है कि इसमें कोई मशीन रखी जाती थी, जिससे ये सजीव-तुल्य होते थे ।[64] 'वीडुपत्मभि:' और 'आशुहेमभि:' शब्द इनकी तीव्र उड़ान को सूचित करते हैं ।[65] अन्य मंत्र में अश्विनी कुमार के रथ को 'श्येनपत्वा' वाज की तरह उड़ने वाला और मन से भी तीव्र गति वाला बताया गया है ।[66] इसमें तीन सीट, तीन हिस्से और तीन हिए होते थे ।[67] यह श्येन और गृध्र की तरह उड़ता था ।[68] इस ज्ञात होता है कि प्राचीन ऋषि आकाशीय मार्ग और आकाशीय यात्रा से परिचित थे । इनका व्यापार के लिए उपयोग होता था, इसका कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं था ।

वेदों से ज्ञात होता है कि व्यापार के लिए कुछ सिक्कों का भी प्रचलन था । वेदों में इन सिक्कों का भी उल्लेख है । ऋग्वेद में निषक का प्रयोग सुवर्ण के आभूषण के लिए है । इसे गले में पहना जाता था। निष्कधारी पुरुष को 'निष्कग्रीव' कहते थे ।[69] अथर्ववेद में सौ निषर्क का दो बार उल्लेख है और इसे सोने का बताया है ।[70] इससे ज्ञात होता है कि निष्क का मुद्रा या सिक्का के रूप में भी प्रचलन था । डॉ॰ मैकडानलड और कीथ ने माना है कि निय्क एक सिक्का रहा होगा ।[71] शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट उल्लेख है कि निष्क सोने का सिक्का था ।[72]

Airo International Research Journal
Volume XIV, ISSN: 2320-3714
February, 2018
Impact Factor 0.75 to 3.19
UGC Approval Number 63012

रुक्म भी सुवर्णालंकार था । यह छाती पर पहना जाता था । पहनने वाले को 'रुक्मवक्षम्' कहते थे ।[73] अथर्ववेद में दो बार 'पांच रुक्म का उल्लेख हुआ है ।[74] इसके साथ 5 वस्त्र गाय आदि का भी उल्लेख है ।इससे ज्ञात होता है कि रुक्म भी एक सिक्का था । यह अशर्फी के तुल्य सोने का सिक्का रहा होगा ।

शतपथ ब्राह्मण में शतमान कहा गया है ।[75] सायण ने कहा है कि शतमान सौ रत्ती का सोने का सिक्का था ।[76] डॉ॰ मैकडानल और कीथ ने भी इसे स्वीकार किया ।तैत्तिरीय संहिता में कृष्णल या रत्ती को एक तोल माना है ।[77] इससे ज्ञात होता है कि शतमान सिक्के की इकाई कृष्णल रही होगी । रत्ती या गुंजा को कृष्णल कहते हैं। यह रत्ती लता का लाल बीज है । उसके ऊपर काला चिन्ह् होता है । शतपथ ब्राह्मण में चांदी के भी शतमान सिक्के का उल्लेख है ।[78] कार्षापण को संक्षेप में पण कहते थे ।[79] कार्षापण चांदी का सिक्का था । प्राचीन भारत में इसका प्रचलन था । इसकी तोल 32 रत्ती थी ।[80]

अथर्ववेद के तीन सूक्तों में ऋण देने-लेने चर्चा है ।[81] इसमें ऋण लेने में होने वाली हानियों का उल्लेख है। अनृण रहने को सर्वोत्तम बताया है ।[82] अथर्ववेद में 'अपमित्य' ऋण का उल्लेख है ।[83] अपमित्य ऋण उसे कहते हैं, जो धान्य और द्रव्य इस शर्त पर लिया जाता है कि उसी तरह की वस्तु देकर ऋण लौटा दिया जाएगा । कौटिल्य ने ऐसे ऋणों को 'आपमित्यक' कहा है ।[84] उस ऋण को उसी रूप में उतारना।

अथर्ववेद में ब्याज विषय में दो शब्द आए हैं : कला और शफ ।[85] कला का अर्थ है सोलहवाँ भाग और शफ का अर्थ है आठवां भाग । इससे ज्ञात होता है कि सामान्यता सूद सब छह प्रतिशत लिया जाता था और अधिक से अधिक साढ़े बारह प्रतिशत । ऋग्वेद में धूर्त पणियों को 'वेकनाट' कहा गया है ।[86] यास्क ने बेकनाट उन सूदखोरों को कहा है, जो अपना रुपया दुगुना बनाना चाहते हैं या बनाते हैं ।[87]

राजा का आवश्यकता के विषय में ऐतरेय ब्राह्मण में एक रौछअख प्रसंग आया है कि देवता और असुर निरन्तर युद्ध करते थे । असुर देवों को हर देते थे । देवों ने विचार किया कि राजा न होने के कारण हम पराजित होते हैं, अत: उन्होंने इन्द्र को अपना राजा बनाया और विजयी हुए।

ऋग्वेद और अथर्ववेद के कई सूक्तों में राजा के प्रजा द्वारा राजा के निर्वाचन का उल्लेख है ।[88] अथर्ववेद में एक मंत्र में स्पष्ट उल्लेख है कि पांचों दिशाओं से आई हुई ये प्रजाएँ तुझे राज्य के लिए निर्वाचित करती है ।[89] राजा की नियुक्ति का कार्य समिति करती थी ।[90] अथर्ववेद के एक मंत्र से ज्ञात होता है कि राजा का निर्वाचन सर्वसम्मति से किया जाता था ।

संक्षेप में चार शब्दों में राजा के पूरे कर्त्तव्यों का निर्देश है । कृषि की उन्नति से ही अन्नसमृद्धि होगी । जन-कल्याण और प्रजा का रंजन राजा को स्थिरता प्रदान करेगा । आर्थिक समुत्रति से ही देश की प्रतिष्ठा बढ़ेंगी । देश की सुदृढ़ता से राष्ट्रीय गौरव बढ़ेगा ।

राजा स्वतंत्र रूप से शासन करता है । इस प्रणाली के शासक को 'विराट्' कहते थे । यह प्रणाली हिमालय के उत्तर भाग उत्तर कुरू, उत्तर मद्र आदि राज्यों में प्रचलित थी । यह शासन-प्रणाली जनतंत्रात्मक या संघ शासन-प्रणाली है । इसमें प्रशासन का उत्तरदायित्व व्यक्ति पर न होकर समूह पर होता है । इसमें प्रशासन का उत्तरदायित्व व्यक्ति पर न होकर समूह पर होता है । इस प्रणाली के शासक को 'परमेष्ठी' कहते थे । महाभारत शान्तिपर्व और सभापर्व में इसका विस्तार से वर्णन हुआ है ।[91] यह गणतंत्र-पद्धति है। इसकी मुख्य विशेषता है - प्रजा में शान्ति-व्यवस्था की स्थापना । इसमें सभी को समान अधिकार प्राप्त होता है । गणमुख्य योग्यता और गुणों के आधर पर होता है ।[92] इस प्रणाली में राज्य का उच्चतम शासक 'राजा' होता था । यह प्रणाली मध्यप्रदेश के कुरू, पंचाल, उशीनर आदि राज्यों में प्रचलित थी ।

अथर्ववेद में सभा और समिति को प्रजापति की दो पुत्रियाँ कहा गया है । दोनों के स्वरूप में अन्तर है । सभा छोटी इकाई है, परन्तु इसका स्वरूप व्यापक है । ये ग्राम सभा से लेकर केन्द्रीय सभा तक होती है मंत्र में 'संविदाने' शब्द का प्रयोग है । इसका अर्थ है- परस्पर संबद्ध, परस्पर संज्ञान वाली । इसका अभिप्राय यह है कि ये दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं । इससे यह भी स्पष्ट होता है कि इन दोनों की स्वतंत्र सत्ता है । दोनों ही लोकहित

और नृपहित का कार्य संपादन करती थीं । मंत्र में सभा के सदस्यों को 'पितरः' कहा गया है, इससे ज्ञात होता है कि सभा के सदस्य अनुभवी और वृद्ध व्यक्ति होते थे ।

निष्कर्ष रूप से हम यह कह सकते हैं कि मानव का सारा का जीवन किसी न किसी चाह में व्यतीत होता है उसे भूख लगी तो भोजन चाहिए प्यास लगी तो पानी चाहिए, तन ढ़कने के लिए वस्त्र चाहिए और शयन करने के लिए मकान चाहिए । परन्तु मनुष्य को अपने प्राण बचाने के लिए सबसे पहले भोजन की आवश्यकता पड़ती है जिसकी पूर्ति अन्न से हाती है । अन्नों के प्राप्ति कृषि से होती है । कृषि के लिए भूमि और वर्षा की आवश्यकता होती है इसलिए अथर्ववेद में भूमि और पर्जन्य को नमस्तकार किया गया है । कृषि की उन्नत्ति से जनकल्याण और राष्ट्र शक्तिशाली बनता है । इस प्रकार से वैदिक काल में अनेकों प्रकार से व्यापार कृषि गाय के महत्त्व के बारे और राजा के अधिकारों के बारे में वर्णन किया गया है जो वैदिक काल में प्रचलित थे । मानव जब उन-प्रकृति प्रदत्त पदार्थों का उचित विधि से सेवन करता है तो वही पदार्थ मानव के लिए कल्याणकारी सिद्ध होते हैं अथवा दुरूपयोग करता है तो वे ही मानव के लिए कष्टदायी सिद्ध होते हैं । वैदिक काल में अन्न आदि में मिलावट करना दण्डनीय अपराध था ज्ञात होने पर राजा उन्हें दण्ड देता या ऐसा अथर्ववेद में कहा गया है । उपर्युक्त का वर्णन करने से ज्ञात होता है कि ये वैदिककाल में वर्णित आर्थिक सोपान है ।

संदर्भ :

1. अथर्व॰ 12.1.42
2. तदेव, 12.1.42
3. ऋग्, 10.34.7
4. यजु॰ 1.22
5. शत॰ 1.6.1.3
6. अ॰ 8.10 (4).11 ऋग्, 8.9.10
7. भागवत पु॰ स्कन्ध 4.16 से 23
8. अथर्व॰ 3.17.1-9
9. वेदों में विज्ञान, पृ॰ 142 से 161
10. यजु॰ 16.33.42.43, तैत्ति॰ 4.5.6 से 9
11. यजु॰ 16.45, 16.33, 16.43, अथर्व॰ 12.1.26
12. यजु॰ 16.38
13. यजु॰ 18.14
14. तैत्ति॰ 5.1.7.3
15. तदेव, 7.2.10.2
16. तदेव, 4.7.4.2
17. ऋग्॰ 3.8.7
18. तदेव, 1.169.10, 1.164.43
19. अथर्व॰ 7.11.1
20. तदेव, 7.1.8.2
21. तदेव, 6.50.1

22. अथर्व॰ 6.50.2
23. छा॰ उप॰ 1.10.1
24. अ॰ 3.14.1 से 6
25. तदेव, 7.73.12, 7.75.1 और 2, 2.26.1 से 4, 4.21.1
26. अथर्व॰ 9.7.25
27. ऋग्॰ 6.28.5
28. तदेव, 6.28.1
29. अ॰ 4.21.6
30. तदेव, 14.2.53 से 58
31. यजु॰ 36.22
32. ऋग्॰ 1.114.10
33. अ॰ 11.2.1
34. अ॰ 10.1.29
35. यजु॰ 13.47 से 50
36. तदेव, 22.5
37. अ॰ 158 से 178
38. ऋग्॰ 6.9.112.3
39. अ॰ 7.73.1
40. अ॰ 1.5.26, 18.4.31,य जु॰ 13.50
41. ऋग्॰ 10.26.6
42. अ॰ 12.3.33
43. तदेव, 3.5.6, यजु॰ 30.7
44. यजु॰ 30.17
45. तदेव, 30.14
46. तदेव, 30.8
47. अ॰ 3.15.1, यजु॰ 30.17
48. तदेव, 3.15.1 से 8
49. तदेव, 3.15.1
50. यजु॰ 3.50
51. अथ॰ 4.7.6, तै॰ 1.2.7.1
52. ऋग्॰ 4.24.10
53. ऋग्॰ 4.24.9
54. अ॰ 3.15.4
55. अ॰ 3.24.7
56. तदेव, 3.15.3
57. तदेव, 5.11.6
58. ऋग्॰ 7.19.2, अ॰ 20.37.2
59. अ॰ 17.1.26

60. बौधा॰ धर्म॰ 1.2.4, 2.2.2
61. ऋग्॰ 1.116.4
62. तदेव, 1.116.4
63. तदेव, 1.25.7
64. ऋग्॰ 1.116.3
65. तदेव, 1.116.2
66. तदेव, 1.118.1
67. तदेव, 1.118.2
68. तदेव, 1.118.4
69. तदेव, 5.19.3 अ॰ 5.17.14
70. अ॰ 20.127.3, अ॰ 20.131.5
71. वैदिक इंडेक्स भाग 1, पृ॰ 455
72. शत॰ 11.4.1.8
73. अ॰ 6.22.2
74. तदेव, 9.5.25 और 26
75. शत॰ 8.2.3.2
76. कात्य॰ श्र॰ 15.6.30
77. तै॰ 2.3.2.1
78. शत॰ 13.2.3.2
79. तै॰ 1.3.7
80. पाणि॰ भारतवर्ष, पृ॰ 236 से 260
81. अथ॰ 117 से 119
82. तदेव, 6.117.3
83. तदेव, 6.117.2
84. अर्थशास्त्र, 2.15
85. अथ॰ 6.46.3
86. ऋग्॰ 8.66.10
87. निरुक्त, 6.26
88. अथ॰ 3.4.1 से 7
89. तदेव, 3.4.2
90. तदेव, 6.88.3
91. सभा पर्व॰ 14.2 से 6
92. डॉ॰ काशीप्रसाद जयसवाल, हिन्दू पोलिटली